सरकार निजी कंपनियों के साथ मिलकर निर्माण करती है और वर्षों तक होती रहती है जनता से वसूली।

केन्द्र हो या राज्य सरकार, सभी बढ़ा रहीं इसका दायरा

पीपीपी मॉडल यानी... जनता पर दोहरी मार

*भारत में 'अपने पैर उतने ही लम्बे करने की परम्परा रही है जितनी लम्बी रजाई हो' लेकिन अफसोस की बात है कि पिछले कुछ वर्षों में हमारी सरकारें इस विश्वास से दूर हटकर 'कर्ज लो और घी पियो-जितना जियो, सुख से जियो' के चार्वाक दर्शन पर अमल करने लग गई हैं। अब तो उससे भी एक कदम आगे पीपीपी यानी **पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप** का सिद्धांत चालू हो गया है। इसमें जनता पर दोहरी मार पड़ती है। जिन विभागों में यह पीपीपी लागू होती है, उनके खजाने को तो जनता भरती ही है, ऊपर से जहां-जहां पीपीपी लागू होती है वहां 'टोल' भी देती है। चिंता की बात यह है कि अब तो हर क्षेत्र में पीपीपी का सहारा लिया जा रहा है।*

50%
बुनियादी ढांचे के काम पीपीपी के तहत करवाने का लक्ष्य रखा गया है चालू पंचवर्षीय योजना में।

03
हवाई अड्डे और 4 बंदरगाह भी बने हैं पीपीपी में।

1996
तक कुछ पुलियाओं पर ही लगता था टोल

1997
पहली बार हुआ टोल का निर्णय

1998
केन्द्र सरकार के निर्णय के बाद देश में पहली बार राजस्थान में एनएच-8 पर कोटपूतली से आमेर के बीच टोल वसूली शुरू हुई। वर्तमान में सभी राष्ट्रीय राजमार्गों के साथ ही कई अन्य सड़कों पर भी टोल लग रहा है।

अकेले स्वर्णिम चतुर्भुज पर सालाना 1500 करोड़ रुपए टोल वसूला जाता है। एनएचएआई को पिछले वर्ष टोल वसूली से 11,387 रुपए प्राप्त हुए हैं।

2,563
परियोजनाएं पीपीपी मॉडल के तहत चल रही हैं देशभर में।

सड़क से रेल तक, सभी जगह यही मॉडल

693 पूरी हो चुकी हैं परियोजनाएं।
33% सड़कों का हिस्सा
4,68,982 करोड़ रुपए की 794 परियोजनाओं पर काम चल रहा है।

पीपीपी के तहत बनी इतनी किमी सड़कें

2009-10	1282	वर्तमान में एनएचएआई पीपीपी के माध्यम से 180 सड़कों का निर्माण करवा रहा है।
2010-11	1270	
2011-12	1905	
2012-13	2569	
2013-14	1751	

जनता से लूट खसोट का खतरा

अश्विनी महाजन,
एसो. प्रोफेसर, दिल्ली विवि

देशभर में आज राष्ट्रीय एवं राज्य राजमार्ग से लेकर एयरपोर्ट, मेट्रो रेल आदि सरकारी और निजी भागीदारी (पीपीपी) पर ही बन रहे हैं। चूंकि निजी क्षेत्र इसमें निवेश कर रहा है तो उसे इन सुविधाओं के बदले उपयोग शुल्क एकत्र करने का अधिकार भी दिया जाता है। सड़कों पर टोल, एयरपोर्ट पर एयरपोर्ट टैक्स, विमान उतारने के लिए विमानन कम्पनियों से वसूली इत्यादि इसी बंदोबस्त के अंतर्गत हैं। पहले इन सभी प्रकार के इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माण सरकार के द्वारा ही होता था। पर एयरपोर्टों के निर्माण पर फिजूल खर्चा हो रहा है। उदारीकरण के इस युग में सरकारें लगातार अपनी मूलभूत जिम्मेवारियों से मुख मोड़ती जा रही हैं। इन्फ्रास्ट्रक्चर ही नहीं शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत जरूरतों को भी निजी क्षेत्र और पीपीपी मॉडल पर छोड़ा जा रहा है।

केन्द्र सरकार हो या राज्य सरकारें, निजी क्षेत्र की साझेदारी के साथ इन्फ्रास्ट्रक्चर निर्माण की बात करते झिझकती नहीं है, बल्कि गर्व के साथ यह कहती है कि उन्होंने निजी क्षेत्र के माध्यम से इतना निवेश करवा लिया। यह समझना होगा कि पहले की तुलना में अब सरकारें धीरे-धीरे काम ही कम कर रही हैं। वे तर्क देती हैं कि सरकार के पास नागरिक सुविधाओं के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं है इसलिए इनको तुरंत पूरा करने के लिए निजी क्षेत्र को लाना जरूरी है। दूसरा तर्क यह दिया जाता है कि निजी क्षेत्र ज्यादा सक्षम होता है, वह सरकार की तुलना में कम लागत पर इन्फ्रास्ट्रक्चर और सामाजिक सेवाओं को उपलब्ध करा सकता है। पर पीपीपी के पक्ष में दिए जाने वाले ये तर्क पूरी तरह सही नहीं हैं।

जिस तेजी से सरकारें पीपीपी मॉडल पर आगे बढ़ रही हैं, ऑडिट के अभाव में निजी कंपनियों द्वारा जनता से लूट-खसोट और बढ़ सकती है। समय की मांग है कि सभी पीपीपी परियोजनाओं का 'कैग' द्वारा ऑडिट करवाया जाए।

कैग के नियंत्रण से भी बाहर

सरकार द्वारा पीपीपी परियोजनाओं में खासा निवेश किया गया है। सभी सरकारी संस्थान एवं कम्पनियां जिनमें सरकारी धन लगा है, वे भारत के कैग के दायरे में आती हैं और उनका ऑडिट किया जाता है। पर सरकारी सहयोग से चलने वाली निजी-सार्वजनिक साझेदारी परियोजनाएं अभी तक 'कैग' के दायरे में नहीं है। कई साल पहले एक विदेशी ऊर्जा कम्पनी 'एनरॉन' द्वारा भारी गड़बड़ियों के चलते इस कम्पनी के साथ समझौता रद्द किया गया था। कई निजी-सार्वजनिक ढांचागत परियोजनाओं में शामिल सत्यम कम्प्यूटर नामक कंपनी के मालिक रामालिंगम राजू द्वारा 7,000 करोड़ रूपए का घोटाला, उसके द्वारा स्वयं स्वीकार करने के बाद इस कंपनी के द्वारा संचालित इन परियोजनाओं पर सवालिया निशान जरूर लगाता है।

अब चूंकि सरकार के सहयोग के साथ निजी क्षेत्र इस इन्फ्रास्ट्रक्चर को बनाता है तो कहा जा सकता है कि सरकार इन्फ्रास्ट्रक्चर बनाने की अपनी जिम्मेदारी से विमुख होती जा रही है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि निजी कंपनियां सही गलत सभी प्रकार के तरीके अपनाते हुए अपने लाभ बढ़ाने की कोशिश करती हैं और निजी पीपीपी परियोजनाएं उसका अपवाद नहीं हो सकती। हाल ही में ऐसे कई उदाहरण सामने आए हैं, जिसमें पीपीपी मॉडल पर बने इन्फ्रास्ट्रक्चर से गलत तरीके से वर्षों तक पैसा वसूला गया। कई बार तो ऐसे भी उदाहरण सामने आए हैं, जिसमें इन्फ्रास्ट्रक्चर का निर्माण ही नहीं हुआ तो भी कंपनियां टोल वसूलती जा रही हैं। अभी हाल ही में एयरपोर्ट रेगूलेटर ने यह कहा कि

देशभर में इस मॉडल के तहत सर्वाधिक काम सड़क निर्माण के हो रहे हैं लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि पहले इन कार्यों को करने वाले महकमों में न तो कर्मचारी स्ट्रेंथ घटी और न ही बजट। उल्टे बजट साल दर साल बढ़ता ही जा रहा है।

माया जाल

- निवेश के प्रलोभन में नीति नियंताओं को पीपीपी मॉडल इतना आकर्षित करता है कि भविष्य की कठिनाईयों पर आंख मूंद लेते हैं। लागत व अन्य शर्तों पर समझौते कर लिए जाते हैं, जिसका बोझ कई वर्षों तक उस जनता पर पड़ता है जो इस निर्णय प्रक्रिया का हिस्सा ही नहीं होती।
- हंगरी और पुर्तगाल इसका ज्वलंत उदाहरण हैं। इन दोनों देशों में निवेश आता देख धड़ाधड़ पीपीपी परियोजनाएं स्वीकृत की गईं लेकिन आर्थिक मंदी शुरू हुई तो इस मॉडल की पोल खुली। दोनों देशों ने पीपीपी पर रोक लगा दी।
- इंग्लैण्ड में भी पीपीपी नीति की समीक्षा शुरू हो गई है।

मध्य प्रदेश

वर्ष 2000 के बाद तेजी से अनेक काम पीपीपी मॉडल के तहत करवाए जाने लगे।

स्थिति	प्रोजेक्ट	लागत
पूरे हुए	41	3,542
काम चालू	113	13,558
प्रस्तावित	82	14,843

छत्तीसगढ़

प्रदेश में सिर्फ एक काम पीपीपी के तहत चल रहा है। नए रायपुर की जल आपूर्ति की 156 करोड़ रुपए की परियोजना।

राजस्थान

प्रदेश में दो दशक से पीपीपी के तहत काम करवाए जा रहे हैं।

स्थिति	प्रोजेक्ट	लागत
पूरे हुए	123	9,016
काम चालू	57	6,775
फाइलों में	157	22,565

(लागत करोड़ रु. में)

राजस्थान और मध्यप्रदेश में कुल **204** परियोजनाएं सड़कों की हैं

राजस्थान से संबंधित सामग्री @ पेज 35

फायदा निजी और जोखिम हो गया सरकार का

प्रोफेसर अरुण कुमार
जेएनयू, नई दिल्ली

आज हम जिस पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप की बात कर रहे हैं, उसकी शुरुआत 1990 के दशक में ब्रिटेन से हुई थी। पर हमारे देश में उस पर ठीक से सोचा नहीं गया। भारत एक गरीब देश है और उसकी जरूरतें ब्रिटेन जैसे विकसित देशों से अलग हैं। एक तरह से देखें तो यह पीपीपी मॉडल हमारे देश के लिए कुछ नया है भी नहीं।

'बाम्बे प्लान' में यह तय किया गया था कि सार्वजनिक उपक्रम (पीएसयू) जब सड़क, बिजली, कोयला, लोहा आदि उपलब्ध कराएं तभी निजी क्षेत्र पनप सकता है। जब यह मिश्रित अर्थव्यवस्था असफल हो गई तो इसका रूप बदल दिया गया है, पर लूट जारी है। अब जोखिम तो सरकार का कर दिया गया है और फायदा निजी क्षेत्र का। दूसरे, पीपीपी में जिस प्राइवेट की भागीदारी की बात की जा रही है वह छलावा है। निजी क्षेत्र 80 प्रतिशत से अधिक पैसा बैंकों से उधार लेते हैं, जो बुनियादी रूप से पब्लिक का ही पैसा होता है। जिसको चुकाने के बारे में ये कितनी चिंता करते हैं इसको हम किंगफिशर के उदाहरण से समझ सकते हैं। निजी क्षेत्र पीपीपी से कितना ही फायदा कमाए, वह उसे घोषित करता ही नहीं है।

विफलता की कहानियां ज्यादा...

प्रो. एन. आर. भानूमूर्ति,
अर्थशास्त्री

केंद्रीय स्तर पर पीपीपी मॉडल सफल नहीं रहा है, हालांकि कुछेक राज्यों में राजमार्गों और एयरपोर्ट्स में पीपीपी की सफलता के कुछ किस्से सुने जा सकते हैं। विश्व बैंक की 2011 की रिपोर्ट के मुताबिक भारत पीपीपी की स्वीकृति और उसे लागू करने वाले देशों में अग्रणी था पर इन प्रोजेक्ट्स की सफलता और कार्यपद्धति सीमित ही है। पीपीपी की विफलता का एक बड़ा उदाहरण दिल्ली और मुम्बई मेट्रो के सम्बंध में देखा जा सकता है, जहां सरकार और निजी, दोनों पक्षों ने कोर्ट में मामला दायर कर रखा है और जल्दी से निपटता नहीं दिख रहा है। अब सवाल है कि आखिर हमारे देश में बड़े स्तर पर शुरू होने के बाद पीपीपी सफल क्यों नहीं हो पाया? इसका जवाब विश्व बैंक की ईज ऑफ डूइंग बिजनेस लिस्ट में भारत की रैंकिंग देखकर खुद-ब-खुद मिल जाता है। किसी भी देश में व्यापार शुरू करने में आने वाली दिक्कतों के हिसाब से भारत का 189 देशों में 179वां स्थान है। सरकारी एजेंसी प्रोजेक्ट की स्वीकृति से पहले निजी भागीदार की तकनीकी दक्षता का भी आकलन ठीक से नहीं कर पाती हैं। उधर, शुरुआत में निजी भागीदार का भी ध्यान प्रोजेक्ट का सही मूल्यांकन न कर पाने के कारण दीर्घावधि में वित्तीय लाभ पर कम और सिर्फ बोली जीतने पर ही ज्यादा टिका रहता है। अगर दिल्ली एयरपोर्ट एक्सप्रेस लाइन का उदाहरण लें तो पहले यात्रियों के आवागमन का अनुमान वास्तविकता से कहीं ज्यादा लगाया गया और फिर नतीजा यह हुआ कि किराया बढ़ाना पड़ा। ज्यादातर मामलों में कमजोर संस्थानिक पद्धतियों के कारण निजी भागीदारी के बारे में फिर से तालमेल बिठाना सफल नहीं हो पाता है। ऐसे कई अन्य मामले भी हैं, जहां समझौतों का प्रारूप कमजोर ढंग से तैयार हुआ, फंडिंग सुचारू नहीं रही, जिससे क्रियांवयन में देरी हुई और प्रोजेक्ट की लागत बढ़ती चली गई। प्रोजेक्ट्स में वित्तीय और राजकोषीय अनिश्चितता बनी रहती है, जैसा कि स्वर्णिम चतुर्भुज प्रोजेक्ट के दौरान देखने को मिला।

पीपीपी परियोजनाओं को सफल कैसे बनाया जाए? जब हम किन्हीं सफल प्रोजेक्ट्स को देखते हैं तो यह तत्व उभरता है कि उनमें जोखिम और लाभ के बारे में पूरी तरह स्पष्टता थी। स्पष्टता के अभाव में जब किसी बाहरी कारण जैसे वृद्धि दर का धीमा होना, आर्थिक संकट, राजनीतिक वजहों से जोखिम बढ़ता है तो प्रोजेक्ट्स की पूर्णता के लिए समन्वित प्रयास नहीं होते। प्रासंगिक और गुणवत्तापूर्ण डाटा की भी कमी देखी जाती है जिसके कारण मध्यम से दीर्घ काल के लिए बेहतर अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। समझौते पर पुनर्विचार के लिए साफ-साफ नियामक प्रक्रिया होनी चाहिए। पीपीपी प्रोजेक्ट्स की विफलता का बड़ा कारण प्रोजेक्ट्स के पारित होने में देरी देखी गई है। हालांकि सरकार ने हाल में दीर्घकालीन प्रोजेक्ट्स को शीघ्रता से पास करने के लिए प्रोजेक्ट मैनेजमेंट ग्रुप प्रस्तावित किया है पर इसमें उन प्रोजेक्ट्स से जुड़े मुद्दे नहीं आते हैं जो कि पहले से ही किसी रूप में पुनर्विचार की श्रेणी में हैं। सार यह कि यद्यपि देश में पीपीपी परियोजनाएं तेजी से बढ़ी हैं, पर अभी भी बड़े संरचानात्मक, लाभ और प्रबंधन के मुद्दे हैं जिनको सुलझाया जाना जरूरी है।

पीपीपी मॉडल की अवधारणा खराब नहीं है। पर हकीकत में महाराष्ट्र में राजमार्ग, एयरपोर्ट, स्वास्थ्य आदि में जो पीपीपी परियोजनाएं लागू की गई हैं वे नेताओं और ठेकेदारों के लिए लाभ कमाने का एक औजार बनकर रह गई हैं। इसके नियम ठीक से नहीं बनाए जाते, निगरानी नहीं होती। अपने चहेतों को ठेका दिया जाता है।

निखिल वागले, वरिष्ठ पत्रकार

इतना काम जारी

रेलवे परियोजनाएं	03
हवाईअड्डे	02
बंदरगाह	29
राष्ट्रीय राजमार्ग	161
राज्यों में सड़कें	187
राज्यों में इन्फ्रा.	144
ऊर्जा प्रोजेक्ट	121

और इनकी तैयारी

1,24,589 करोड़ रुपए की 65 परियोजनाएं पाइपलाइन में चल रही हैं केन्द्र सरकार के पास।

4,67,531 करोड़ रुपए की 1,011 परियोजनाएं पाइपलाइन में चल रही हैं राज्य सरकारों के पास। सर्वाधिक शहरी ढांचे से जुड़ी।

समय की जरूरत है यह मॉडल

पार्थ जे. शाह, अमित चंद्रा
सेंटर फॉर सिविल सोसायटी

नागरिकों को बुनियादी सेवाएं उपलब्ध कराने में सरकार की असफलता के बारे में हमारा लंबा और बुरा अनुभव रहा है। सरकार के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वह नागरिकों को बिना किसी भेदभाव के सेवाएं उपलब्ध कराने की अपनी जिम्मेदारी से पीछे न हटे, वहीं यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि सेवाओं के निष्पादन में इतनी कुशलता बरती जाए कि वह सेवा अंतिम आदमी तक भी पहुंच सके। कई प्रकार के प्रशासनिक उपाय और दंड विधान के बावजूद नौकरशाही प्रधान सरकारी तंत्र में कोई सुधार दर्ज नहीं किया गया। सेवा प्रदान करने की दिशा में सरकारी तंत्र की इसी अकुशलता को सुधारने के एक उपाय के रूप में पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप (पीपीपी) को अपनाया गया। इसमें सेवा के लिए जिम्मेदार तो कमोबेश सरकार ही होती है पर निजी क्षेत्र की कुशलता का उपयोग सेवा प्रदाता के रूप में होता है।

भारत में कुछ क्षेत्रों में पीपीपी मॉडल तब भी था जबकि यह एक इतना चर्चित शब्द नहीं था। इसका सबसे पुराना उदाहरण सहायता प्राप्त निजी स्कूल हैं, जहां प्रबंधन निजी क्षेत्र में होता है पर सरकार उन्हें वित्तीय सहायता देती है। आज बुनियादी ढांचे की अधिकांश विकास परियोजनाएं जैसे राष्ट्रीय राजमार्ग, एयरपोर्ट, बंदरगाह, मेट्रो रेल, फ्लाईओवर, स्पेशल इकोनॉमिक जोन निजी क्षेत्र के माध्यम से ही कार्यान्वित किए जा रहे हैं और सरकार वर्ल्ड क्लास बुनियादी ढांचागत सुविधाएं उपलब्ध कराने में सफल हो रही है। पीपीपी मॉडल का एक और सफल उदाहरण राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना है। इसमें गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के लिए सरकार इलाज के लिए 30,000 रुपये तक का खर्च वहन करती है। इसमें लाभार्थी को सुविधा है कि किसी भी जगह निजी या सरकारी में चिकित्सा केंद्र पर अपना उपचार करा सकता है। यह प्रणाली इतनी सफल हुई है कि इसमें जर्मनी जैसे देशों ने भी रुचि दिखाई है। आज लगभग सभी सेवाएं जो सरकार देना चाहती है उनमें पीपीपी का भी कुछ न कुछ घटक होता है - चाहे वह पासपोर्ट सेवा हो, आधार हो, ई-मित्र या ई-शासन हो या फिर बिजली, पानी सेवा या शिकायत निवारण क्षेत्र।

पर पीपीपी के क्रियान्वयन की दिशा में चुनौतियां भी हैं। जैसे, निजी क्षेत्र को काम दिए जाने में खुलापन और पारदर्शी प्रक्रिया हो। समझौते का पूर्ण सम्मान हो। दो - तीन कंपनियों को काम (एक को निर्माण दूसरे को प्रबंधन, देखरेख) सौंपकर उनमें परस्पर नियंत्रण और संतुलन पैदा किया जाए। पीपीपी परियोजनाओं पर सरकार के बढ़ते खर्च को आपत्ति उठाने वालों को यह समझना होगा कि यह पूंजी निवेश पर किया गया उत्पादक खर्च है। अगर सरकार को पांच साल में 100 स्मार्ट शहरों का विकास करना है तो निजी सेक्टर का शामिल किए बिना यह संभव नहीं होगा। पीपीपी से सरकारी काम में किफायतसारी और समय की पाबंदी दोनों ही आते हैं।

टेलीकम्यूनिकेशन क्षेत्र की क्रांति भी पीपीपी की सफलता मान सकते हैं, जिसमें सरकार स्पेक्ट्रम का आवंटन करती है और निजी कंपनियां सेवा प्रदान करती हैं।